THE TIMES OF INDIA

Date: 12-04-17

# Judicial murder

## *Pakistani military court's death sentence for Kulbhushan Jadhav is a mockery of justice*

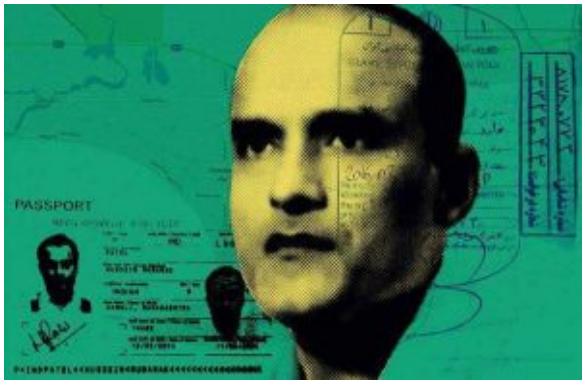


The decision of a Pakistani military court to hand down death sentence to Indian national Kulbhushan Jadhav, captured by Pakistani authorities last year, is nothing but a ploy to counter New Delhi's diplomatic pressure on Islamabad for nurturing terrorism. The secretive Pakistani military court – which has also come under criticism from Pakistan's civil society – conducted a farcical, rushed trial whose proceedings are utterly opaque, and convicted Jadhav for espionage and subversive activities in Balochistan and Karachi. No details about Jadhav's alleged criminality have been provided by Pakistani authorities. New Delhi was even denied consular access to Jadhav despite asking for it 13 times – a clear violation of Pakistan's obligation under the Vienna Convention on consular relations.

On the contrary, Pakistan has tried to paint Jadhav as an Indian Kasab. The attempt to establish equivalence between the Pakistani terrorist who wreaked havoc on Mumbai, directly killing scores of Indian citizens, and Jadhav is laughable. In fact, Pakistani authorities haven't even been able to properly explain Jadhav's presence in their country. If Jadhav was indeed a spy, as Pakistan claims, then why would he be carrying an Indian passport to incriminate his own country? It's likely that Jadhav was a businessman working out of Chabahar in Iran and was kidnapped and brought to Pakistan by operatives loyal to Islamabad – a claim also espoused by former German ambassador to Pakistan Gunter Mulack.Besides, even senior Pakistani officials such as the PM's adviser on foreign affairs Sartaj Aziz have questioned the evidence against Jadhav. Aziz had told Pakistan's senate last December that the dossier on Jadhav contained mere statements. This creates sufficient doubt about the military court's version that Jadhav was looking to 'wage war' against Pakistan.

In such circumstances, implementing a death sentence on Jadhav would be tantamount to judicial murder. This is nothing but a distraction from Pakistan's own failure to curb home-grown terrorism. Having an unaccountable military court deliver death sentences based on kangaroo trials is also a dagger pointed at the heart of civilian authority in Pakistan, recalling the judicial killing of former Prime Minister Zulfikar Bhutto. That Pakistan today is seen as a safe haven for terrorists is undisputable. Islamabad should address this instead of falsely accusing an Indian of planning sabotage activities.

THE ECONOMIC TIMES

*Date: 12-04-17*

# GST: Cut the rate, extend coverage

Most goods (nearly 70%) will reportedly attract a goods and services tax rate of 18%. This is welcome. This rate is less than half of the current cumulative burden of indirect taxes on goods. Consumers will gain as most of these taxes will be subsumed under GST, cutting out the cascade of multiple levies that products bear, and lower retail prices. Most services should also attract the 18% rate when all taxes levied on goods and services are collapsed into one.It is more than the so-called revenue-neutral rate — one that would leave revenues no worse off — considering that the combined tax collections of the Centre and states are about 17% of GDP now. Of the total collections, corporate, personal income and customs fetch about 7 percentage points of GDP, and the taxes that would be subsumed under GST yield about 10% of GDP.Globally, the average VAT rate is about 16.4%. So, increasing the coverage of GST will make it possible for the Centre and states to lower the rate.India will have a fourtier GST structure with rates ranging from 5% to 28%. Rates can converge when exemptions are removed and all goods and services are steadily brought under the tax net. It will also declutter the tax system. Regrettably, a large chunk of the economy, which includes real estate, electricity, alcohol and petroleum products, is out of GST.This breaks the GST chain — wherein manufacturers get credit for the taxes that they pay on inputs — and increases scope for evasion. The GST Council should swiftly bring the excluded items also under GST.

Sensibly, the health ministry wants all tobacco products that include biris (beedis) to attract the highest tariff of 28% and a sin tax component of 15% that will not be eligible for input tax credit. The idea is to generate revenues and penalise a health hazard. Hefty taxes on cigarettes have restrained their use, but increased consumption of tax-evading smuggled cigarettes, besides of other tobacco products, some of them more harmful than cigarettes. The GST Council should just not heed to demands for sector-specific concessions.

---

दैनिक भास्कर

*Date: 12-04-17*

# मोटर वाहन कानून में सुधार के साथ सुरक्षा संस्कृति जरूरी

सरकार ने मोटर वाहन अधिनियम में कई महत्वपूर्ण संशोधन करके सड़क सुरक्षा को कारगर बनाने का प्रयास तो किया है लेकिन, असली सवाल यह है कि क्या हमारे नागरिक, बाजार की संस्थाएं और खुद सरकार उसे स्वीकार करने को तैयार हैं? कुछ संशोधन तो लागू होकर ही रहेंगे जैसे कि गाड़ियों के लाइसेंस को आधार कार्ड से जोड़ना और आरटीओ पर निर्भरता घटाकर ऑनलाइन पंजीकरण कराना ताकि चोरी जाने वाली गाड़ियों का फिर पंजीकरण न हो सके। इस संशोधन के तहत न सिर्फ लाइसेंस प्रणाली को आधार कार्ड से जोड़ा जाएगा बल्कि देश की सभी गाड़ियों का एक केंद्रीय आंकड़ा बैंक तैयार किया जाएगा। लेकिन, इसका एक चिंताजनक पहलू गाड़ियों का प्रयोग करने वालों की

निजता और उनके नागरिक अधिकारों का है और राष्ट्रीय स्तर पर आंकड़े उपलब्ध होने के चलते उन अधिकारों का उल्लंघन होने का खतरा कायम है। दूसरा संशोधन तीसरे पक्ष के बीमा के बारे में है, जिसमें मुआवजे की राशि बढ़ाई गई है ताकि हादसा होने पर प्रभावित पक्ष को राहत पहुंचाई जा सके। इस बारे में बीमा कंपनियों और गाड़ी मालिकों की ईमानदारी को भी कायम करने की जरूरत है, क्योंकि बीमा के तहत कई बार जरूरतमंद लोग मुआवजा नहीं उठा पाते लेकिन, पहुंच वाले लोग मामूली हादसे में भी भारी राशि वसूल लेते हैं। यह कार्य तभी संभव है, जब सरकार और बाजार में काम करने की जवाबदेह और पारदर्शी संस्कृति का विकास हो। संशोधन का तीसरा पहलू यातायात के नियमों के उल्लंघन पर कठोर दंड दिए जाने का है। क्या नियम कड़े कर दिए जाने से लोग यातायात के नियमों का उल्लंघन नहीं करेंगे? इसका सीमित असर ही पड़ता है। कानून को लागू करने वाली एजेंसियों की सामर्थ्य इतनी कम है कि वे देश की सभी सड़कों के हर बिंदु पर कानून लागू करवाने के लिए उपलब्ध नहीं हो सकतीं। दूसरी तरफ भारतीय नागरिकों का स्वभाव आमतौर पर यातायात के कानून तोड़ने का है और वे सुरक्षा के लिए जरूरी उपायों को अपनाने में भी अपनी तौहीन समझते हैं। भारतीय वाहन चालक न तो सड़कों पर लोकतंत्र चाहते हैं और न ही नियम कानून का पालन। वे सड़कों को एक रोमांचक स्थली के रूप में देखते हैं और यात्रा के साथ दुस्साहस का भी प्रदर्शन करना चाहते हैं। इसलिए मोटर वाहन कानून तभी सार्थक होगा जब देश के नागरिक उसके साथ सुरक्षा की संस्कृति विकसित करें।

---

बिज़नेस स्टैंडर्ड

***Date: 12-04-17***

# परमाणु हथियार क्षमता और हमारा सिद्धांत

भारत के परमाणु सिद्धांत को लेकर चल रही बहस के बीच यह मान लेना भूल होगी कि भारत अपने रुख में कोई बदलाव कर रहा है। इस संबंध में विस्तार से जानकारी दे रहे हैं नितिन पई शाकाल और गब्बर में लंबे समय से विवाद था। दोनों एक दूसरे के खिलाफ दुश्मनी पालते थे लेकिन आपस में लडऩे से बचते थे क्योंकि इससे दोनों को ही नुकसान पहुंचता। कई बार गलतफहमियां ऐसी छोटी मोटी घटनाओं को जन्म देती हैं जो आगे चलकर बड़ी दुश्मनी में तब्दील हो सकती हैं। इसके चलते खूनी लड़ाइयां तक हो सकती हैं। एक दिन शाकाल पूरे शहर में ऐसे पोस्टर लगवा देता है जिनमें दावा किया जाता है कि उसका गैंग अब गब्बर पर पहले हमला नहीं करेगा। लेकिन अगर पहले सामने से वार हुआ तो वह पीछे भी नहीं हटेगा। अब आप जरा खुद को गब्बर की जगह रखकर देखिए।

आप शाकाल के वादे को कितनी गंभीरता से लेंगे? सरसरी तौर पर देखा जाए तो शाकाल के वादे की एकमात्र वजह यही नजर आती है कि वह घायल होने से बचना चाहता है। आप इस संभावना से कभी इनकार नहीं कर सकते हैं कि शाकाल की घोषणा आपको आश्वस्त करने की एक चतुराई भरी चाल है ताकि वह आपको चौंका सके। यानी आपको उस पर कड़ी नजर रखनी होगी। उसकी ताकत का मुकाबला करना होगा और हमेशा इस आशंका में जीना होगा कि वह आप पर पहले हमला कर सकता है, भले ही उसने कुछ भी वादा किया हो। चीन और पाकिस्तान भारत के पहले परमाणु हथियार न इस्तेमाल करने की घोषणा (एनएफयू)को इसी दृष्टि से देखते हैं। हम भी चीन के एनएफयू को इसी दृष्टि से देखते हैं। ऐसी किसी भी घोषणा के बाद कोई भी प्रतिपक्षी से आश्वस्त नहीं होता है और उसे हमेशा यह जोखिम रहता है कि सामने से अचानक हमला हो सकता है। दरअसल परमाणु हमले की वजह से होने वाले भयंकर नुकसान के डर से ही देश एक दूसरे पर पहले हमला नहीं करते।

परमाणु प्रतिरोध का यही मूल है। हाल ही में अमेरिकी थिंक टैंक कार्नेगी एंडोमेंट फॉर इंटरनैशनल पीस में आयोजित हालिया सम्मेलन के बाद पत्रकारों और विद्वानों ने यह मानना शुरू कर दिया है कि शायद भारत ने अपना एनएफयू सिद्धांत त्याग दिया हो। कहा जा रहा है कि संभव है कि भारत पाकिस्तान के परमाणु हथियार जखीरे को नष्ट करने के लिए पहले उस पर हमला कर दे ताकि भारत के खिलाफ ऐसे हमले की आशंका ही समाप्त की जा सके। पाकिस्तानियों ने भी कहना शुरू कर दिया है कि हम तो पहले से ही ऐसा कह रहे थे। भारत को परमाणु क्षेत्र से दूर रखने के हिमायती निहित स्वार्थी तत्त्वों ने अपनी कलम की धार तेज करनी शुरू कर दी है। इस दावे में कोई दम नहीं है। किसी को नहीं पता कि पाकिस्तान के पास कितने परमाणु हथियार हैं। किसी को नहीं पता कि वे कहां रखे गए हैं। किसी को नहीं पता कि उनको प्रक्षेपित करने की व्यवस्था कहां है। एक अनुमान के मुताबिक पाकिस्तान के पास 120 ऐसे हथियार हैं। यह केवल अनुमान है। ऐसे में पहले हमला कर उनको नष्ट करने की बात एक मजाक से ज्यादा कुछ नहीं। गौरतलब है कि केवल एक बम की मदद से भारत का एक पूरा शहर बरबाद किया जा सकता है। वह बम भारत की सामाजिक स्थिरता और आर्थिक संभावनाओं को खत्म कर सकता है। अगर मान लिया जाए कि भारत ऐसा हमला करेगा तो इसके लिए भारत को पाकिस्तान को पूरी तरह खत्म करना होगा क्योंकि वहां हजारों जगह हैं जहां बम रखे जा सकते हैं।

अगर ऐसा किया गया तो कुछ एक भारतीय शहरों के नष्ट होने का जोखिम भी रहेगा क्योंकि पाकिस्तान की तरह से जवाबी हमला हो सकता है। यह सब केवल इसलिए कि कहीं पाकिस्तान सीमा पार करने वाले कुछ भारतीय जवानों पर हमला न कर दे? अब लोग यह मानने के लिए स्वतंत्र हैं कि क्या कोई भारतीय नेता कुछ हजार जवानों की मृत्यु की आशंका समाप्त करने के लिए लाखों लोगों की जान चली जाने देगा? अगर पाकिस्तान भारत पर हमला करता है और परमाणु बम गिराता भी है तो हमारे पास इससे निपटने के कई विकल्प हैं। अगर जरूरत पड़ ही जाए तो परमाणु हथियारों की भी कमी नहीं। मुझे लगता है कि सामरिक नीतिकारों के साथ एक समस्या है। वे अपना अवधारणात्मक ढांचा शीतयुद्ध के आधार पर तैयार करते हैं जहां दो महाशक्तियां अन्य देशों को लेकर आपस में लड़ती रहीं। इन देशों का भूगोल और उनका जननांकीय ढांचा भारतीय उपमहाद्वीप से अलग है। ऐसे में जब हमें भारत, पाकिस्तान और चीन के संदर्भ में प्रतिरोधी शक्ति या प्रतिरोधी मूल्य की बात सुनने को मिलती है तो मुझे आश्चर्य होता है कि क्या विश्लेषकों को वाकई ऐसा लगता है कि हम इनमें से दो को अपने संदर्भ में अलग कर सकते हैं। हमारी भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि परमाणु हथियारों को आबादी से कहीं दूर एकत्रित करना मुश्किल है। सैनिकों पर हमलों को शहरों पर हमलों से अलग करके नहीं देखा जा सकता। इन तमाम ढांचों की बात करें तो ये हमें भ्रामक निष्कर्ष की ओर ले जा सकते हैं।परमाणु हथियार इस्तेमाल करने का निर्णय हमेशा राजनीतिक होता है इसलिए इसे सामरिक भी कहा जा सकता है। भारत का परमाणु सिद्धांत यह है कि एक परमाणु हमला बहुत भीषण होता है और उसका पुरजोर विरोध किया जाएगा। यह अच्छी स्थिति है। परमाणु हमला करने की आकांक्षा रखने वाले विरोधी को यह जानना चाहिए कि अगर उसने ऐसा कुछ किया तो इसके जवाब में एक भीषण त्रासदी ही हमारे सामने होगी। ऐसे में जोखिम उठाना है या नहीं, यह तय करने का जिम्मा भी प्रतिद्वंद्वी का ही रहेगा। अगर पाकिस्तान चाहता है कि वह परमाणु हथियार तैयार करने, उसे ले जाने के लिए क्रूज मिसाइल तैनात करने पर और अधिक धन खर्च करे तो वह ऐसा कर सकता है। लेकिन उन्हें यह बात अधिक हताश कर रही है कि भारत इस पर कोई प्रतिक्रिया ही नहीं दे रहा। भारत को अपना रुख पहले जैसा ही रखना चाहिए: यानी किसी भी तरह के हमले की स्थिति में जबरदस्त प्रतिक्रिया। फिर चाहे वह पुराने बमों के रूप में हो या मिसाइल की मदद से लक्षित हमले के रूप में। देश के सामरिक क्षेत्र में हो रही बहस और राजनेताओं की व्यक्तिगत टिप्पणियों से इतर यही भारत की आधिकारिक स्थिति होनी चाहिए और यही है। ऐसा केवल सिद्धांत के प्रति समर्पण की वजह से नहीं होना चाहिए बल्कि इसलिए होना चाहिए क्योंकि हम परमाणु हथियारों के इस्तेमाल से बेहतर तरीके से वाकिफ हैं। भारतीय उपमहाद्वीप में परमाणु प्रतिरोध का संबंध साझा नुकसान की समझ से तय होता है, न कि शीतयुद्ध की शैली के तयशुदा विनाश से।

***Date: 12-04-17***

# व्यवस्थित बदलाव जरूरी

गत सप्ताह केंद्रीय मंत्रिमंडल ने रेल विकास प्राधिकरण (आरडीए) के गठन की इजाजत दे दी। यह प्राधिकरण रेल नियामक के रूप में काम करेगी। उम्मीद है कि 1 अगस्त से प्राधिकरण काम संभाल लेगा और वह तमाम नीतिगत निर्णयों पर सरकार को सलाह देगा, खासतौर पर किराया और माल भाड़ा तय करने के बारे में। लंबे समय से भारतीय रेल हर मोर्चे पर संघर्ष कर रहा है। यात्रियों की बात करें तो किराया बहुत अधिक नहीं बढ़ा है लेकिन सेवाओं का स्तर भी नहीं सुधरा है। दूसरी ओर, यात्री किरायों से कम आय की भरपाई माल भाड़ा बढ़ाकर करने की कोशिश की गई। इससे रेलवे की वित्तीय स्थिति भी प्रभावित हुई और वह बतौर मालवाहक महंगा होता गया। फिलहाल लंबी दूरी की यात्राओं में रेल सफर हवाई सेवा की तुलना में महंगा है और छोटी दूरी में बस की तुलना में।

सबसे बड़ी समस्या यह रही कि ऐसे मसले पर निर्णय लेने की राजनीतिक इच्छाशक्ति नहीं दिखाई गई। मिसाल के तौर पर कभी समय पर किराये में उचित वृद्धि नहीं की गई। रेलवे को ऐसे स्वतंत्र नियामक की सख्त आवश्यकता थी जो वाणिज्यिक सिद्धांतों पर काम करता हो और उचित निर्देशन कर सके। जैसा कि राष्ट्रीय परिवहन विकास नीति समिति (एनटीडीपीसी) ने 2014 में कहा था कि रेलवे बोर्ड के सारे कामकाज का केंद्रीकरण इस संस्थान की वृद्धि की दृष्टि से बड़ा अवरोधक साबित हुआ है, खासतौर पर ऐसे समय जबकि बुनियादी ढांचे में जबरदस्त निवेश की आवश्यकता है। मनमाने निर्णयों की जगह स्वतंत्र नियामक किरायों को तार्किक बनाने और कारोबारी गुंजाइश बढ़ाने में अधिक सफल होगा। अगर रेलवे के माल भाड़ा राजस्व में आ रही कमी को देखा जाए तो ऐसा हस्तक्षेप महत्त्वपूर्ण है। इसकी मदद से ही राजस्व और यातायात दोनों सुधारे जा सकेंगे। लिहाजा, स्वतंत्र नियामक स्वागतयोग्य पहल है। सबसे पहले वर्ष 2001 में राकेश मोहन की अध्यक्षता वाले विशेषज्ञ समूह ने इसकी आवश्यकता जताई थी।

वर्ष 2015 आते-आते कई समितियों ने इसकी जरूरत पर बल दिया। इससे पहले रेल बजट को आम बजट में मिलाकर रेलवे को राजनीतिक हस्तक्षेप से दूर करने का एक और उपाय किया गया। इस कदम को उसी से जोड़कर देखना चाहिए। रेल मंत्री सुरेश प्रभु ने वर्ष 2015-16 के रेल बजट में ही रेल नियामक लाने का वादा किया था। लेकिन उसके बाद सरकार राह भटक गई। उसने नियामक के लिए विधायी मंजूरी हासिल करने की प्रक्रिया में काफी समय गंवाया। यह काम कार्यकारी आदेश से भी किया जा सकता था। इससे पहले भी कार्यकारी आदेश पर नियामकीय संस्थाएं गठित की जाती रही हैं। इसलिए रेलवे नियामक के गठन में देरी के पीछे यह दलील समझ से परे रही क्योंकि नियामक बनाने के लिए तरीका तो आखिरकार वही अपनाना पड़ा। हालांकि माल भाड़े या किराये को लेकर इस नए संस्थान की अनुशंसाएं रेलवे पर बाध्यकारी ढंग से लागू नहीं होंगी। उसे इस बात की आजादी होगी कि वह अपने मुताबिक किराया तय कर सके। उम्मीद है कि ऐसा करने से रेलवे को तकनीकी मसलों पर विशेषज्ञ सलाह लेने का अवसर रहेगा। उदाहरण के लिए प्राधिकरण किराये का निर्धारण लागत वसूली के सिद्धांत पर कर सकता है। परंतु सेवा प्रदाता होने के नाते अंतिम निर्णय रेलवे के पास रहेगा। बहरहाल, एक बात यह भी है कि सुविधा और सुरक्षा बढ़ाए बिना केवल यात्री किराया बढ़ाने से रेलवे के कामकाज में कोई बड़ा बदलाव आने वाला नहीं है। रेलवे में असली सुधार तभी आएगा जब नियामक विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिस्पर्धा पैदा करे और उनको तथा निजी कारोबारियों को लागत और तयशुदा मुनाफे के आधार पर रेल परिचालन की इजाजत दे।

***Date: 12-04-17***

# राज्यसभा की अनदेखी कर नई शक्तियां देता वित्त विधेयक

यह किसी सरकार का कानून-निर्माण प्रक्रिया के जरिये कानून तोडऩे का अब तक का सबसे अधिक साहसिक कदम है। मौजूदा सरकार ने संसद में वित्त विधेयक, 2017 को राज्यसभा की मंजूरी के बगैर पारित कराने के साथ ही जरूरी वैधानिक प्रावधानों को भी पूरा कर दिया है। इसके लिए वित्त विधेयक को धन विधेयक के तौर पर पेश करने का रास्ता अपनाया गया है। नियामकीय प्राधिकारियों के आदेशों के खिलाफ दायर अपीलों की सुनवाई करने वाले विभिन्न अपीलीय न्यायाधिकरणों को अन्य अधिकरणों के साथ संबद्ध करने से खासा तनाव पैदा हुआ है। खासकर लोकसभा और राज्यसभा दोनों की मंजूरी से गठित संस्थानों में किए गए बदलावों को लेकर यह तनाव देखा जा रहा है। संवैधानिक अदालतों में इस दुरुपयोग को चुनौती दी जा सकती है लेकिन वहां पर कुछ खास असर देखने को नहीं मिला है। संविधान के भीतर लोकसभा अध्यक्ष के पद में नियंत्रण एवं संतुलन की अंतर्निहित व्यवस्था की गई है। किसी विधेयक के धन विधेयक होने या नहीं होने के बारे में सदन के अध्यक्ष की राय ही अंतिम होती है। संविधान के मुताबिक धन विधेयक एक ऐसी कानूनी व्यवस्था है जो वित्त और कर से जुड़े मामलों से संबंधित होता है। सरकार ने वित्त विधेयक को लेकर जिस तरह का रवैया अपनाया है वह कानूनी रूप से गलत है। हालांकि हरेक गलत को न्यायिक रूप से उचित नहीं ठहराया जा सकता है। अगर संविधान किसी उच्च पद पर आसीन व्यक्ति के फैसले को अहमियत देता है तो उसके पीछे यही तर्क होता है कि उस पद पर बैठे व्यक्ति को विश्वसनीय होना चाहिए। लेकिन अगर उसी विश्वास को चोट पहुंचती है तो यही माना जाएगा कि संविधान में ही कोई खामी है जिसे केवल संविधान संशोधन से ही दुरुस्त किया जा सकता है।इसी के साथ यह भी सच है कि अदालतों ने भी न्यायोचित नहीं ठहराए जा सकने वाले हरेक गलत कार्य को हमेशा दुरुस्त करने की कोशिश नहीं की है। संवैधानिक अदालतों ने खुशी-खुशी कई कानून बनाए हैं। दिल्ली में प्रवेश करने वाले वाहनों पर पर्यावरण शुल्क लगाने जैसे कानून बनाने से लेकर शीर्ष अदालतों में नियुक्ति के लिए न्यायाधीशों का कॉलेजियम सिस्टम बनाने जैसे कानून पूरी तरह से न्यायाधीशों के फैसलों से ही उपजे कानून हैं। जब तथ्य काफी हद तक उद्वेलित करते हैं तो न्यायिक हस्तक्षेप की राह बन ही जाती है।राजनीतिक कारणों से राज्यों के राज्यपालों को हटाए जाने को शीर्ष अदालतों में चुनौती दी गई है। इस मामले में अदालतों का कहना है कि राज्यपालों को हटाने संबंधी सरकार का कोई भी फैसला मनमाने तरीके से नहीं लिया जा सकता है। इसके साथ ही उनका यह भी मानना है कि इन फैसलों में अदालतें दखल नहीं दे सकती हैं। यह भी संभावना है कि धन विधेयक न होते हुए भी धन विधेयक के रूप में पारित कर दिए जाने को लेकर अदालत में याचिका दाखिल कर दी जाए।राज्यसभा को कमतर करने की यह तरकीब अतीत में भी अपनाई जा चुकी है। संसद के दोनों सदनों ने विदेशी मुद्रा नियमन अधिनियम (फेरा), 1974 के स्थान पर विदेशी मुद्रा अंतरण प्रबंधन अधिनियम (फेमा), 1999 को गैर-आपराधिक कानून के तौर पर पारित किया था। वह धन विधेयक के तौर पर पेश नहीं किया गया था। भारत के विधायी एवं आर्थिक नीति के इतिहास में इस कानून को मील का एक पत्थर माना जाता है। दो साल पहले फेमा कानून में भी आपराधिक प्रावधान वाले तत्त्व धन विधेयक के जरिये जोड़ दिए गए। उसके लिए राज्यसभा की सहमति की भी जरूरत नहीं थी। कानून से छेड़छाड़ की इन कोशिशों को अदालत में चुनौती नहीं दी गई क्योंकि राजनीतिक रूप से ऐसा करना सही नहीं होता। लेकिन इस बार कहीं अधिक बड़ा उल्लंघन होने से इसे अदालत में चुनौती दिए जाने की काफी संभावना है। हालांकि न्यायाधिकरणों के गठन को लेकर जब संवैधानिक चुनौती दी गई थी तो उस मामले में अदालतों का रवैया अलग-अलग देखने को मिला। राष्ट्रीय कर न्यायाधिकरण का तो गठन नहीं हो सका लेकिन राष्ट्रीय कंपनी कानून न्यायाधिकरण के गठन को लेकर दायर तमाम चुनौतियों के बावजूद यह टिका हुआ है। दरअसल संविधान की व्याख्या को लेकर उच्चतम न्यायालय के विभिन्न पीठों और उच्च न्यायालयों में अलग राय देखी जाती रही है।वैसे इस पूरी चर्चा का मकसद यह कहना नहीं है कि दखल के जरिये जिन बदलावों की बात कही गई है, वह हमेशा खराब ही रहा है। इनमें से

कुछ संशोधन तो तारीफ के काबिल हैं जबकि कुछ बदलाव काफी खराब रहे हैं। इस तरह देखें तो वित्त विधेयक, 2017 राज्य के विभिन्न अंगों के बीच चल रहे सत्ता संघर्ष का एक हिस्सा है। अगर न्यायपालिका ने राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग को असंगत ठहराकर अपनी शक्तियां दोबारा हासिल की हैं तो कार्यपालिका ने भी खुद को अद्र्ध-न्यायिक शक्तियां देकर बदला चुकाने की कोशिश की है। संविधान से छेड़छाड़ केवल वित्त विधेयक में वर्णित न्यायाधिकरणों तक ही सीमित नहीं रही है। इस धन विधेयक में यह भी जिक्र है कि जिन न्यायाधिकरणों का फिलहाल इसमें कोई उल्लेख नहीं है, उन्हें आपस में मिला देने का अधिकार सरकार को दे दिया गया है। सरकार केवल एक शासकीय आदेश से ही ऐसा फैसला कर सकती है। यह वित्त विधेयक, 2017 का सर्वाधिक संवेदनशील हिस्सा है क्योंकि इसके जरिये विधायिका ने कानून निर्माण की बेहद अहम शक्तियां मनमाने तरीके से कार्यपालिका को हस्तांतरित कर दी हैं। धन विधेयक का हिस्सा होते हुए भी इस तरह का प्रदत्त विधायन संवैधानिक चुनौती का विषय बन सकता है। अगर इसे धन विधेयक के एक हिस्से में देखा जाए तब भी विधायिका की तरफ से कार्यपालिका को किए गए मनमाने प्रत्यायोजन के नाते इसकी आलोचना की जानी चाहिए।

---

दैनिक जागरण

***Date: 11-04-17***

# बेड़ियों को तोड़ती मुस्लिम महिलाएं

मशहूर शायर फैज अहमद फैज ने अरसा पहले अपनी एक नज्म के जरिए औरतों को झकझोरने की कोशिश की थी। नज्म कुछ यूं है, 'बोल कि लब आजाद हैं तेरे, बोल जुबां अब तक तेरी है। उनकी इस नज्म ने महिलाओं पर गहरा असर डाला। यह नज्म जगह-जगह गुनगुनाई जाने लगी और अब इसका असर भी दिखने लगा है।यूं तो औरतों पर बंदिशों की कमी नहीं, लेकिन मुस्लिम समुदाय में ये कुछ ज्यादा नजर आती हैं। बहरहाल, औरतें अब बोलने लगी हैं। उन्होंने अपने हक में आवाज बुलंद करनी शुरू कर दी है। यह एक खुशनुमा सवेरे की दस्तक है।

देश ही नहीं, दुनियाभर में मुसलमान औरतें बदल रही हैं और सही मायनों में अपनी मौजूदगी दर्ज करा रही हैं। हाल के वर्षों में औरतों ने कई झंडे गाड़े हैं, जो किसी नजीर से कम नहीं। इनमें से एक नाम है इराक में यजीदी समुदाय की 15 साल की लड़की लाम्या का। नौवीं कक्षा की छात्रा लाम्या को वर्ष 2014 में आईएसआईएस ने बंधक बना लिया था। पांच मर्तबा उसकी खरीदफरोख्त की गई। किसी तरह आतंकियों के चंगुल से निकलकर छूटी लड़की आज दुनियाभर में घूम-घूमकर अपनी दास्तान सुना रही है। वह उम्मीद जताती है कि एक दिन दुनिया आईएसआईएस नामक नासूर से जरूर मुक्ति पा लेगी। पड़ोसी पाकिस्तान में पख्तून औरतें भी बगावत पर उतर आई हैं और वजीरिस्तान में उन्होंने खुद को 'सेक्स स्लेव बनाए जाने से इनकार कर दिया। फ्रांस की एक नेता मैरीन ली पेन को लेबनान यात्रा के दौरान सिर पर स्कार्फ पहनने के लिए कहा गया, लेकिन उन्होंने ऐसा करने से साफ मना कर दिया।

अपने अधिकारों के लिए सऊदी अरब की महिलाओं का संघर्ष भी धीरे-धीरे रंग लाया। नतीजतन, 2014 के नगर परिषद चुनाव में उन्हें पहली बार मताधिकार मिला। उन्हें चुनाव में उम्मीदवार बनने का अधिकार भी मिला और पहली बार ही 200 महिलाएं चुनावी मैदान में उतर गईं। मतदाता पंजीयन कराने वाली पहली महिला सलमा अल रशादी ने कहा कि उन्हें बहुत अच्छा लग रहा है, बदलाव एक बड़ा शब्द है, लेकिन चुनाव ही एकमात्र जरिया है, जिससे हमें वास्तव में प्रतिनिधित्व मिल सकेगा। 43 साल में पहली बार 20 वर्षीय शायमा अब्दुर्रहमान मिस इराक चुनी गईं। इस आयोजन के मुख्य द्वार पर एके47 की चाकचौबंद पहरेदारी में ही सही, चार दशकों में पहली बार किसी ने जंग की नहीं, बल्कि जिंदगी की बात की। ईरान की एक लड़की मसीह अलीनेजाद ने फेसबुक पर हिजाब फ्री कैंपेन चलाया, ईरानी लड़कियों से बिना हिजाब

वाली फोटो मंगाई और लाखों लड़कियों ने अपनी फोटो अपलोड कर दी। जबकि आज भी ईरान में बिना हिजाब निकलने पर गिरफ्तारी हो सकती है। ये मुसलमान औरतों के मुसलसल संघर्ष की मुकम्मल होती मिसालें हैं।

भारत में भी मुस्लिम महिलाएं पितृसत्तात्मक बेड़ियों को तोड़ सफलता के नए प्रतिमान गढ़ रही हैं। हाजी अली दरगाह में अचानक महिलाओं का प्रवेश बंद कर दिया गया। मुस्लिम औरतों ने इस पर बहस-मुबाहिसा किया। उससे बात नहीं बनी तो उन्होंने अदालत का रुख किया। अदालत में उन्हें मिली जीत से धर्म के ठेकेदार मुंह ताकते रह गए।शाहबानो मामले से लेकर सायरा बानो मामले तक आते-आते मुस्लिम महिलाएं काफी बदल गईं। उन्होंने तीन तलाक के मुद्दे को भी अदालत में चुनौती दे डाली और किसी भी स्त्री विरोधी मजहबी व्याख्या को मानने से इनकार कर दिया। हरियाणा में एक लड़की ने सिर्फ इसलिए निकाह करने से इनकार कर दिया, क्योंकि वर पक्ष के यहां शौचालय नहीं था।उत्तर प्रदेश में नई सरकार बनने के साथ ही रोजाना बड़ी संख्या में आ रहे तीन तलाक के मामलों को लेकर महिलाएं मुख्यमंत्री से मुलाकात कर रही हैं। महिलाएं बाकायदा प्रतिनिधिमंडल गठित कर महिला कल्याण मंत्री रीता बहुगुणा जोशी के पास चली जाती हैं और उनसे पूछती हैं कि आप की पार्टी के चुनावी संकल्प पत्र में तीन तलाक का मसला भी था तो इस पर अब आप क्या कर रही हैं?

यह सच है कि भारत के इतिहास में पहली बार किसी सियासी दल के चुनावी घोषणा पत्र में मुस्लिम महिलाओं की पीड़ा का पर्याय बने तीन तलाक को शामिल किया गया। लिहाजा अब जवाबदेही भी सरकार की बनती है। महिलाएं बेहद उत्साहित, आशान्वित हैं खासकर पीड़ित महिलाएं बार-बार सवाल कर रही हैं।मुस्लिम महिलाओं से जुड़े मुद्दे पिछले सत्तर सालों के इतिहास में हमेशा हाशिये पर ही रहे। अल्पसंख्यक अधिकारों के नाम पर मुसलमान मर्द अपने लिए तो सब कुछ लेना चाहते हैं, लेकिन औरतों को वे अपनी मर्जी के मुताबिक ही देना चाहते हैं। कौम की आधी आबादी को तवज्जो ही नहीं मिली। उसे अनसुना किया गया। उसी कौम के तथाकथित रहनुमाओं ने उसकी लगातार अनदेखी की। उनकी बदजुबानी और मजहबी जकड़बंदी ने भी औरत को पीछे धकेल दिया। स्वयंभू उलमाओं ने खुद की गढ़ी किताबों के जरिए उसकी भूमिका को सीमित करने का काम किया। पितृसत्ता इतना डरती है औरत से! ये देखकर हैरानी होती है। बाबासाहेब आंबेडकर ने एक बार कहा था - गुलाम को गुलामी का एहसास करा दो तो वह विद्रोह कर गुलामी की बेड़ियां तोड़ देगा। मुस्लिम औरतों को गुलामी का एहसास हो गया है और अब वे विद्रोह पर उतारू हो आजाद हवा में सांस लेने पर आमादा हैं।अब उन्हें स्त्री विरोधी गढ़ी हुई मजहबी किताबों से डराया नहीं जा सकता।

---

जनसत्ता

***Date: 12-04-17***

# सहयोग का सफर

बांग्लादेश की प्रधानमंत्री शेख हसीना की भारत यात्रा और इस अवसर पर दोनों देशों के बीच हुएसमझौतों का दूरगामी महत्त्व है। जिन बाईस समझौतों पर दोनों पक्षों ने हस्ताक्षर किए उनमें सैन्य सामानों की खरीद, असैन्य परमाणु समझौता, बस-सेवा, ट्रेन सेवा और बिजली की आपूर्ति जैसे बिंदु शामिल हैं। इन समझौतों के दोनों देशों के लिए आर्थिक और व्यावसायिक आयाम तो हैं ही, इनकी कूटनीतिक अहमियत भी कम नहीं है। क्योंकि चीन लगातार बांग्लादेश के साथ अपने संबंधों को मजबूती प्रदान कर रहा है। बांग्लादेश चीन से रक्षा सामग्रियां आयात कर रहा है। हाल में उसने दो पनडुब्बियां भी चीन से ली हैं। चीन की रणनीति दक्षिण एशिया और दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के साथ रिश्ते बना कर भारत की तुलना में अपनी सामरिक स्थिति मजबूत करने की है। इसके लिए वह अपनी 'चेकबुक रणनीति' पर भी काम करता है। लिहाजा, भारत ने बांग्लादेश के साथ आपसी सहयोग का दायरा बढ़ा कर वक्त की नजाकत को समझा है। यों भी बांग्लादेश के साथ भारत के गहरे

सांस्कृतिक और सामाजिक संबंध रहे हैं। और अच्छा संयोग यह है कि इस समय वहां शेख हसीना की सरकार है, जो कि बांग्लादेश के मुक्तिनायक शेख मुजीबुर्रहमान की बेटी हैं और भारत से हमेशा दोस्ताना रिश्ते चाहती हैं।

समझौतों के मुताबिक भारत बांग्लादेश को सैन्य सामानों की खरीद के लिए पचास करोड़ डॉलर की मदद करेगा तथा 450 करोड़ रुपए का कर्ज भी देगा। दोनों देशों के बीच असैन्य परमाणु समझौता भी हुआ है, जिसमें एक-दूसरे को रक्षा सहयोग करने की शर्त है। पश्चिम बंगाल के राधिकापुर से बांग्लादेश में खुलना तक बस सेवा का एलान हुआ है। कोलकाता से खुलना तक के लिए रेल चलाने पर सहमति बनी है। यह सेवा दोबारा शुरू होगी, क्योंकि 1965 में भारत-पाक युद्ध के दौरान इस ट्रेन सेवा को बंद कर दिया गया था। तब बांग्लादेश को पूर्वी पाकिस्तान के नाम से जाना जाता था। इस ट्रेन से आगे चल कर नेपाल और भूटान भी जुड़ेंगे। इससे जहां नागरिकों के स्तर पर संपर्क बढ़ेंगे, वहीं व्यापार और पर्यटन को बढ़ावा मिलेगा। ट्रेन के इसी साल जुलाई में शुरू होने की उम्मीद है। भारत, बांग्लादेश को साठ मेगावॉट बिजली की आपूर्ति और बढ़ाएगा। छह सौ मेगावॉट बिजली पहले से ही दी जा रही है।

दोनों देशों की ओर से जारी साझा बयान में आतंकवाद के खिलाफ मिल कर लड़ने की प्रतिबद्धता जताई गई है। भारत लंबे समय से आतंकवाद से पीड़ित है। ऐसे में बांग्लादेश का साथ देने का आश्वासन सुकुनदेह है। बांग्लादेश में खालिदा जिया की सरकार के समय वहां पूर्वोत्तर के हथियारबंद गिरोहों को शरण मिलती थी। अवामी लीग की सरकार आई तो भारत को पूर्वोत्तर में आतंकवाद पर काबू पाने में बांग्लादेश से अपूर्व सहयोग मिला। बांग्लादेश के मुक्तिदाताओं के दस हजार बच्चों को छात्रवृत्ति देने तथा सौ मुक्तिदाताओं को भारत में मुफ्त इलाज कराने समेत कई और समझौतों ने भी दोनों देशों के संबंध को मजबूत बनाने में मदद की है। तीस्ता नदी जल बंटवारे का मामला जरूर सुलट नहीं पाया, क्योंकि पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी इस पर राजी नहीं हुईं। लेकिन उन्होंने इतना जरूर कहा है कि उनके राज्य में तीन पहाड़ी नदियां हैं, जिनका पानी देने को वे तैयार हैं। प्रधानमंत्री ने उम्मीद जताई है कि तीस्ता की बाबत भी देर-सबेर कोई न कोई हल जरूर निकल आएगा।

---

नवदुनिया

***Date: 12-04-17***

# मर्ज का इलाज नहीं कर्ज माफी

आठ साल पहले केंद्र की मनमोहन सिंह सरकार ने राष्ट्रीय स्तर पर किसानों का कर्ज माफ किया था। अब उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने राज्य में किसानों की कर्ज माफी की है। दस वर्षों से भी कम अंतराल में किसानों का कर्ज दोबारा माफ करना पड़ा है। यह दर्शाता है कि मौजूदा व्यवस्था में किसान कर्ज लेते रहेंगे और सरकारें उसे माफ करती रहेंगी। कर्ज माफी किसान की समस्या का निदान नहीं है। यह कुछ वैसा है, मानो कैंसर के मरीज को सिरदर्द की गोली दी जा रही हो। किसान इसलिए कर्ज अदा नहीं कर पाते, क्योंकि उनकी आमदनी कम है। दूसरी ओर सरकार की आर्थिक समीक्षा के अनुसार किसान की आय बढ़ रही है। समीक्षा के अनुसार 2005 से 2014 के दौरान सभी वस्तुओं के मूल्य का सूचकांक 100 से बढ़कर 180 हो गया। इस दौरान खाद्यान्नों के मूल्य का सूचकांक 100 से चढ़कर 231 हो गया। यानी सभी वस्तुओं की तुलना में खाद्यान्न की कीमतों में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि हुई है। किसान की लागत जरूरी बढ़ी है, लेकिन उसके बनिस्बत आमदनी में ज्यादा इजाफा हुआ है। ऐसे में यह विडंबना ही है कि आय बढ़ने के बावजूद किसान कर्ज के बोझ तले दबते जा रहे हैं।

हैरानी की बात है कि किसान पर कर्ज खेती के कारण नहीं बढ़ रहा है। जानकारों के अनुसार किसान बेटी के विवाह, मकान, वाहन और अन्य कई निजी जरूरतों पर कर्ज की राशि खर्च करते हैं। चूंकि आमतौर पर बैंक उन्हें इन जरूरतों के लिए कर्ज नहीं देते तो वे बीज, खाद या फसली कर्ज के नाम पर कर्ज लेकर इन जरूरतों को पूरा करते हैं। आय की तुलना में किसान की जरूरतें ज्यादा तेजी से बढ़ रही हैं। पहले किसान पैदल चलता था। आय बढ़ी तो वह साइकिल खरीदने में सक्षम हो गया, किंतु उसकी जरूरत बाइक खरीदने की हो गई है। इसकी पूर्ति वह कर्ज से करता है। साइकिल की हैसियत में बाइक की सवारी उस पर भारी पड़ती है। किसान का कोई दोष नहीं है। वह भी शहरों जैसी आधुनिक जीवनशैली के मोहपाश में फंसा है। शहरी लोग बाइक चलाएं और किसान की बेटी साइकिल से स्कूल जाए, यह उसे गवारा नहीं। होना भी नहीं चाहिए। गांव और शहर के बीच बढ़ती खाई भी किसान पर बढ़ते कर्ज का एक पहलू है।

कृषि विशेषज्ञ देविंदर शर्मा के अनुसार 1970 से 2015 के बीच कृषि उत्पादों के समर्थन मूल्य में 20 गुने का इजाफा हुआ है। इसके मुकाबले सरकारी कर्मियों के वेतन में 120 गुना वृद्धि हुई है। आय का यह असंतुलन किसान के कर्ज का कारण है। सरकार की सोच है कि उत्पादन बढ़ाने से किसान की आय बढ़ाई जा सकती है। सरकार द्वारा मृदा स्वास्थ्य कार्ड, फसल बीमा, कर्ज पर सबसिडी, ड्रिप सिंचाई व कोल्ड स्टोरेज जैसी योजनाएं चलाई जा रही हैं। बीते 70 सालों से यह सिलसिला जारी है, फिर भी उत्पादन बढ़ने से किसान की आमदनी में अपेक्षित वृद्धि का लक्ष्य हासिल नहीं हुआ। ऐसे में मौजूदा सूरतेहाल में भी उत्पादन बढ़ाने से आय में वांछित वृद्धि नहीं हो पाएगी।

बढ़े उत्पादन के साथ और भी दिक्कतें जुड़ी हैं। मसलन, उसकी खपत कहां हो? देश में उनका उपभोग सीमित है। अक्सर सुनने को मिलता है कि बंपर फसल होने के कारण भारतीय खाद्य निगम के गोदाम में भी भंडारण के लिए जगह कम पड़ जाती है और अनाज खुले में सड़ने पर मजबूर होता है। निर्यात से भी इसका हल नहीं हो सकता। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन के मुताबिक 2011 में खाद्य पदार्थों के मूल्य का वैश्विक सूचकांक 229 था, जो 2016 में घटकर 151 रह गया। अंतरराष्ट्रीय बाजार में खाद्यान्न के दाम गिर रहे हैं। इन गिरते मूल्यों के कारण खाद्यान्न का निर्यात करने के लिए सरकार को निर्यात सबसिडी देनी होगी, लेकिन डब्ल्यूटीओ के नियमों में निर्यात सबसिडी पर प्रतिबंध है। ऐसे में बढ़े उत्पादन को अंतत: घरेलू बाजार में ही बेचना होगा। इससे दाम गिरेंगे। बढ़ता उत्पादन हमारे किसानों के लिए ही अभिशाप बन गया है। बीते दिनों किसानों को मजबूरन आलू-प्याज आदि सड़कों पर फेंकना पड़े थे।

कुल मिलाकर उत्पादन बढ़ाकर किसान की आय नहीं बढ़ाई जा सकती, क्योंकि बढ़े उत्पादन को खपाने का कोई विकल्प उपलब्ध नहीं है। जैसे बाढ़ का पानी नहीं निकल पाने के कारण लोग डूबते हैं, उसी तरह कृषि उत्पादन का निस्तारण न होने की वजह से किसान कर्ज में डूब रहे हैं। इस समस्या का हल कृषि के दायरे मे उपलब्ध है ही नहीं। केवल खेती से किसान की आय नहीं बढ़ाई जा सकती है। इस समस्या का एक समाधान यह हो सकता है कि किसान को भूमि के आधार पर सबसिडी दी जाए। अमेरिका में किसानों को भूमि परती छोड़ने के एवज में सबसिडी दी जाती है। इससे उन्हें ठीकठाक आमदनी हो जाती है। ऐसे में शेष उत्पादन को औने-पौने दाम पर बेचकर भी वे बाइक खरीद पाते हैं। इस पद्धति को हम भी अपना सकते हैं। देश में लगभग दस करोड़ किसान हैं जिनमें सात करोड़ के पास एक एकड़ से कम भूमि है। प्रारंभ मे इन्हें 6,000 रुपए प्रतिवर्ष की सबसिडी दी जा सकती है। सरकार को इस पर 42,000 करोड़ रुपए सालाना खर्च करने होंगे, जो वर्तमान में मनरेगा पर किए जा रहे खर्च के बराबर है। इस सबसिडी से किसान को सीधे राहत मिलेगी। वह किस्त पर बाइक खरीद सकेगा। इसमें खास बात यही है कि उसके उत्पादन कम करने से बाजार में कृषि उत्पादों के दाम बढ़ेंगे और परिणामस्वरूप किसान की आय बढ़ेगी। इसके उलट हमने यही देखा कि उत्पादन बढ़ने से दाम घटते हैं व किसान की आय कम होती है। वहीं उत्पादन कम होने से बाजार में वस्तुओं की आपूर्ति कम होती है तो दाम बढ़ते हैं जिससे किसानों की आय बढ़ सकती है। आय बढ़ाने के लिए उत्पादन का एक विशेष स्तर कारगर होता है, जैसे स्वास्थ्य सुधार के लिए घी की एक निश्चित मात्रा उपयुक्त होती है। इस विशेष स्तर से अधिक उत्पादन और इस स्तर से कम उत्पादन, दोनों ही किसान

के लिए नुकसानदेह होते हैं। फिलहाल तो सरकार पर दबाव यही है कि उत्पादन बढ़ाकर ही किसानों का कल्याण किया जाए, लेकिन असल में उत्पादन घटाकर ही किसानों के हित साधे जा सकते हैं।कृषि क्षेत्र में हमारी नीति में मौलिक बदलाव की जरूरत है। किसान की इच्छा है कि वह भी सरकारी-निजी नौकरीपेशा लोगों की तरह बाइक पर घूमे। इस हसरत में कोई बुराई नहीं, पर इसके लिए उसकी आय में वृद्धि जरूरी है, मगर उत्पादन वृद्धि को प्रोत्साहन देकर हम किसान को समाधान के बजाय संकट की ओर ही धकेल रहे हैं। वक्त का तकाजा तो यही कहता है कि किसानों को भूमि पर सीधे सबसिडी दी जाए, ताकि उन पर उत्पादन बढ़ाने का दबाव कम हो। उत्पादन घटेगा तो कृषि उत्पादों के दाम भी बढ़ेंगे। किसान को सीधे सब्सिडी मिलेगी व बढ़े हुए दाम भी। तब वह भी खुशहाल हो सकता है।

*(लेखक अर्थशास्त्री व आईआईएम, बेंगलुरु के पूर्व प्राध्यापक हैं। ये उनके निजी विचार हैं)*

---

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

***Date: 11-04-17***

# Judicial prohibition

## *Supreme Court curbs on sale of alcohol call for a clearer demarcation of separation of powers.*

Hundreds of hotels and restaurants across India suddenly stopped selling liquor on April 1. Ironically, all had valid bar licences; for five-star and four-star hotels, it was mandatory to have bar licences. No liquor was supplied to Indian and foreign guests even in their rooms and several hotels promptly removed miniature liquor bottles that were stocked in individual rooms. In most states, a vast majority of liquor shops had shut down — in Tamil Nadu, over 60 per cent of state-owned retail outlets had to close.This was no April Fools Day prank but part of a grand plan envisaged by the Supreme Court to reduce deaths by drunken driving. Official statistics showed that in 2015, there were 5,01,423 deaths due to accidents and 16,298 or 3.3 per cent of the total were due to drunken driving. In the past, there had been advisories from the Union of India to ban liquor shops on national and state highways but these were not implemented by the states. On December 15, 2016, the Supreme Court passed far-reaching orders directing closure of liquor shops on such highways by April 1, 2017, and also prohibiting sale of liquor within 500 metres on either side of them. All states and Union Territories were mandated to strictly enforce these directions.On March 31, barring some relaxation for Meghalaya and Sikkim and for local bodies with a population of 20,000, the Supreme Court clarified that all its earlier directions would stand, pointing out that its judgments had neither formulated any liquor policy, nor assumed any legislative function. Actually, the court did exactly that.A Model Policy, formulated by the Union of India in 2005, provided for a ban on retail liquor shops within 100 metres of any religious or educational institution or hospital and 220 metres from the middle of national or state highways. Most significantly, the Model Policy made it clear that this ban would not apply to parts of national or state highways that passed through cities and towns that had a population of more than 20,000.

Rejecting this exception, the Supreme Court declared that it made neither sense nor logic to allow sale of liquor on highways that passed through such cities or towns. In effect, the Supreme Court completely altered the Model Policy resulting in a ban on sale of alcohol throughout the national or state highways and even in licenced hotels — most of whom, unfortunately, are situated on such highways. The distance of 220 metres was also more than doubled to 500 metres.To impose prohibition, fully or partially, is the sole prerogative of each state under Entry 8 of List II of Schedule VII of the Constitution and even Parliament cannot direct any state as to when and where liquor can be sold. Several states have formulated their own rules — Karnataka has imposed

a 220 metre limit while West Bengal continues with a 720 feet rule. By imposing a nation-wide uniform ban of 500 metres with minor exceptions, the Supreme Court has really substituted all state laws with its own limits and other directions.The two orders of the Supreme Court have had catastrophic fiscal consequences for almost all states, with revenue losses estimated to be in excess of Rs 75,000 crore and a potential loss of one million jobs. The collateral damage on domestic and international tourism is yet to be estimated. With the cancellation of bar licences, the huge impact on the revenues of hoteliers will result in loan defaults. What happens to licences that were valid well beyond April 1, 2017? Are they entitled to refund the licence or vend fees?No country in the world, much less its courts, reduced deaths by drunken driving by closing liquor shops. Stringent punishment for those driving after drinking, being found with alcohol above a certain limit (through breath and/or blood tests) has a salutary effect. While the Supreme Court's intention is laudable, it must be accepted that it is entirely for individual states to tackle this problem.

If a total death toll of 16,298 deaths can justify a substantial ban on sale of alcohol, can 10,00,000 deaths due to tobacco consumption justify a total ban by the Supreme Court on sale of all tobacco products?The judicial ban on alcohol sales is unfortunately not unique. Last year, we had a sudden ban on sale of diesel vehicles, later limited to cars above 2000 cc. When the Motor Vehicles Act, 1988 permits diesel vehicles of certain specifications to be sold and licensed, can the Supreme Court or high courts impose additional conditions or restrictions on the ground that they will subserve public interest? The banning of diesel vehicles had serious economic consequences for manufacturers and dealers who had made plans based on Parliamentary legislation.Judicial directions, based on PILs, but contrary to the existing laws, introduce a dangerous element of uncertainty and can often be counter-productive as courts do not have the luxury of time to consider the overallconsequences of their orders. These are what Lon Fuller calls "polycentric issues" that should be outside the realm of the judiciary. He likens such problems to a spider's web. A pull on one strand results in a complicated pattern of tensions throughout the web, causing one or more of the weaker strands to snap ('The Forms and Limits of Adjudication', Lon Fuller and Kenneth Winston, (1978) 92 Harvard Law Review).Far-reaching decisions are made by the Supreme Court under Article 142 of the Constitution — a provision which enables it to pass orders to do "complete justice". Our Constitution does not have strict separation of powers — the legislature, executive and judiciary sometimes overlap — but there are certain lines that ought not to be crossed. In the absence of alcohol, it is perhaps time for a sobering reflection on the need to demarcate these lines with greater clarity and certainty.

***The writer is a senior advocate practicing in the Supreme Court***

---

***Date: 11-04-17***

# Second best friend

## *Important treaties were signed during Sheikh Hasina's visit. But India must do more to match China's clout in Bangladesh.*

At the end of her four-day visit to India, Bangladesh Prime Minister Sheikh Hasina Wajed said, "We decided to take our bilateral relations to a new high". The 22 treaties signed between the two countries on April 8 testify to the Bangladesh premier's optimism. The pacts pertain to a wide range of bilateral issues, including defence cooperation, energy and infrastructure. Sheikh Hasina and PM Narendra Modi inaugurated a bus service that will run between Kolkata, Khulna and Dhaka, a new passenger train service and a new rail link for running goods trains. India will also finance a diesel oil pipeline from Numaligarh to Parbatipur and Indian companies will enter into a long-term agreement for the supply of diesel. The gloss of these pacts, however, fades in view of India's failure to address its eastern neighbour's long-standing concern: Sharing of Teesta waters. The failure could mean that India will remain Bangladesh's second best friend. Beijing today exercises far more influence on Dhaka in matters of commerce, developmental issues, and most importantly, strategic affairs.Indo-Bangladesh relations have been on an upswing since Sheikh Hasina assumed office in 2009. In June last year,

the two countries swapped tiny islands in the Bay of Bengal ending a border dispute that had kept thousands of people in stateless limbo for nearly 70 years. Trade between the two countries is today more than $7 billion. But India has a long way to go before it matches China's economic clout. Beijing is currently Dhaka's biggest trading partner with an annual turnover of more than $10 billion. According to PM Modi, the agreements signed during Sheikh Hasina's visit "bring our resource allocation for Bangladesh to more than $8 billion over the past six years". This pales in comparison to the $24 billion loan extended by China, last year, during President Xi Jinping's visit to Bangladesh. Dhaka has consistently backed Beijing's "One Belt, One Road" initiative despite New Delhi's reservations.What India cannot achieve economically vis-a-vis Bangladesh, it can try to by building trust with its eastern neighbour. The two countries are bound together by history and geography. But water sharing has remained the sticking point for more than four decades. At the end of his deliberations with Sheikh Hasina, PM Modi said, "I firmly believe that it is only my government and your excellency, Sheikh Hasina, your government, that can and will find an early solution to Teesta water sharing." These words could bring little cheer in Bangladesh, where the alarmingly thin flow of the Teesta reminds people of the threats to their livelihoods due to barrages in upstream India.

---

राष्ट्रीय सहारा

***Date: 11-04-17***

# तीस्ता फिर रह गई

***नुकसान और फायदे के विवाद में फंसी तीस्ता नदी पर कोई फैसला नहीं हो सका.***

बांग्लादेश की प्रधानमंत्री शेख हसीना की हाईप्रोफाइल यात्रा में तीस्ता जल समझौता अहम था. जिस तरह प्रधानमंत्री ने उनके स्वागत में प्रोटोकॉल तोड़ा और उन्हें राष्ट्रपति भवन में ठहराया, इसे देख कर यही लगा कि इस बार तीस्ता पर संधि तय है.इस समझौते पर भारत से ज्यादा बांग्लादेश सरकार का बहुत सारा दांव पर लगा हुआ है. कुछ इस तरह से कि अगर सारी संधि न होती और अगर केवल तीस्ता के पानी पर बात बन जाती तो यह भारत की मित्र, पर विरोधियों की नजर में पिट्ठू, हसीना सरकार का प्रताप रह जाता. उसकी साख आगे बढ़कर विपक्षी खालिदा जिया के इस आरोप को जमीन चटा देती कि हसीना ने कुर्सी के लिए भारत के हाथ बांग्लादेश को बेच दिया है.तब चीन की भी बोलती बंद हो जाती, जो भारत पर 'बांग्लादेश को प्यासा ही छोड़ने' की तोहमत लगा रहा है. दरअसल, भारत-बांग्लादेश संबंधों के लिए प्रतिपक्षियों ने तीस्ता को एक कसौटी मान लिया है. उनका मानना है कि भारत किसी भी कीमत पर तीस्ता का पानी बांग्लादेश से आधा-आधा नहीं बांटेगा और इस तरह द्विपक्षीय संबंध तत्काल सूख जाएंगे. यह जोखिम भारत उठाने की स्थिति में नहीं है-किसी भी लिहाज से.इसकी एकमात्र वजह दक्षिण एशिया में बांग्लादेश की मौजूदा भू-रणनीतिक स्थिति नहीं है, बल्कि इसके अलावा भी बहुत कुछ साझा है. इसलिए भले ही अबकी भी पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी के चलते तीस्ता बंट नहीं सकी हो, लेकिन उनका रुख थोड़ा वैकल्पिक हुआ है. इसलिए वह तीस्ता के बजाय तोहरा समेत चार-पांच नदियों का पानी बांग्लादेश को देने पर राजी हुई हैं.चीन के प्रोपगैंडा के बावजूद कि भारत ने तीस्ता का ज्यादा जल अपनी तरफ कर लिया है, ममता का यह तर्क उचित है कि नदी में जल प्रवाह की कमी हुई है. लिहाजा, नदियों के जलस्तर का सत्रे कराया जाए. हालांकि उन्हें मालूम है कि बांग्लादेश की मांग के मुताबिक मौजूदा 36 फीसद के बजाय आधा-आधा पानी बांटने पर न केवल सरकार बल्कि जनमत भी सहमत है. मनमोहन सरकार तो संविधान संशोधन पर भी तैयार थी. इसलिए बांग्लादेश को भी लगता है कि 2018 के चुनाव के पहले तक पानी उसे मिल जाएगा